# "भीड़ का न्याय"

"रूहानियत के प्रसंग" में इस भीड़ प्रचार पर भी विचार करना आवश्यक ही बन जाता है । क्या ये सभी घर जाने का शौंक रखने वालों का इकट्ठ है ? कहा जाता है हंसों की कतारें कभी नहीं दिखती, कौवों की बारात अवश्य ही दृष्टिगोचर होती है । "कबीर ऐसा एक आध जो जीवित मृतक होई ।" "ऐसा कोई नहीं जो इह तन देवे फूंक । अंधा लोक न जानई रहया कबीरा कूक ।" या तो ये वाणी भाव भरी झूठी या फिर ये इकट्ठ झूठे !

सच्चे परमार्थी को ये सब पहलू इस भयानक दलदल में प्रवेश करने से पहले खूब सोच-विचार कर लेने चाहिये । कहीं फिर बाद में हाथ न मलना पड़े । समय तो पल-2 बीतता ही चला जा रहा है कहीं इन भीड़ों में "खो" गये तो फिर बाहर निकलने का रास्ता तो इस जन्म की क्या बात अनन्त युगों में भी कहीं दृष्टिगोचर ही न हो पायेगा ! फिर ये सब क्या चक्कर है ? अगर गहराई से इनके सभी पहलुओं पर विचार किया जाये तो पता चलेगा कि जड़ में कोई एक आध रूह ऐसी थी जो "जीवत मृतक" हुई उसने "कमाई" की और उसे परमात्मा का गुण नाम (शब्द) "कणी" के रूप में प्राप्त हुआ । अब इस "कणी" का रंग इतना चोखा है कि हींग लगे न फटकरी । सब ओर रंगत ही रंगत अर्थात सभी सरकारें इस "कणी" के आगे "नतमस्तक" मिलेंगी ! अब विचार कीजिये कि आप की जेब में आप के कमाये या मुफ्त में मिला (वो भी पीछे अवश्य कहीं घालना घाली हुई ही है ।) साधन है आप के ही अधिकार में । आप चाहें तो इस "धन" को जिस पर चाहें बेशक बिना रोक-टोक खर्च कर सकते हैं । वस्तु उपलब्ध रहेगी । पर कब तक ? जब तक आपके अधिकार में धन मौजूद है । अब धन कहीं कहता है कि मुझे कहाँ खर्च करो और कहाँ नहीं । अर्थात सदुपयोग अथवा दुरुपयोग "धन" इस सोच-विचार से रहित केवल साधन मात्र ही है । उसी तरह से वेद यज्ञ अग्नि

प्रकट कर विशेष कार्य को सम्पादित करने के लिये दोहराये जाते हैं। अब यदि उन्हें मुर्दे की चिता पर प्रकट अग्नि में सम्पादित किया जाने लगे तो वेद नहीं कहते कि यह विधान नहीं है मुझे यहाँ मत पढ़ो ! इन मिसालों के भावों से यह समस्या भी स्पष्ट हो ही जाती है कि जिसने कमाई कर नाम की कणी प्राप्त की है (शुद्ध अथवा विकृत स्वरुप में) वह इस नाम रूपी धन को खर्च कहाँ और कैसे करता है। सदुपयोग (आत्मिक कल्याण के लिये) दुरूपयोग (निजी स्वार्थों की पूर्ति अथवा विभिन्न आत्माओं के नाश के लिये) याद रखना चाहिये जड़ चेतन (अच्छा-बुरा) सभ एक ईश (नाम) ही केवल है। क्या साधू में ही ईश है फिर डाकू में कौन सा तत्व काम कर रहा है अर्थात उसमें भी केवल एक नाम ही मात्र है। इसीलिये साकत के संग को त्यागने का उपदेश दिया जाता है। तो क्या परमात्मा के संग को त्याग का भाव इसमें नहीं है ! "साकत संग न कीजिये दूर जाइये भाग। बासन कासै परसिअे तउ कुछ लागै दाग।" ऐसे परमात्मा की संगत का त्याग करने में ही जीव का कल्याण निहित है। दूसरी ओर सज्जन के संग का निर्देश दिया जाता है तो ऐसे परमात्मा के संग में ही आत्मा कल्याण की भागीदार होती है। सभी स्थानों में एक परमात्मा का ही मात्र वास है, यह विचार जीव नें अपने विवेक द्वारा करना है कि कौन-2 से परमात्माओं का संग उसके लिये

शुभ चिन्तक साबित होगा । लेकिन देखने में आता है कि जीव होमै के मद में बिल्कुल अपने विवेक को खो चुका है । वह खुद अंधा-अंधों को आँख वाला घोषित करने में लगा हुआ है । यही इन सभी प्रकार की भीड़ों का लगभग न्याय ही है । सभी प्रकार के मत-धर्मो के पीछे यही परिपाटी आदि से चली आ रही है । कमाई करने वाला तो कोई मत-धर्म बना अथवा चला कर नहीं जाता । वो आत्मा की तथा कमाई दोनों की "कीमत" जानता है "मर मर जीवै ता किछ पाऐ नानक नाम वखाणै ।" तथा अपनी और दूसरी रूहों के कल्याण में ही केवल रत रहता है । शेष "विषयों" से उसे कोई सरोकार हीं नही रहता । लेकिन अगली पीढ़ियों में ये सब मर्यादा भंग हो जाती है । धीरे-2 मान-सम्मान, स्वार्थो की पूर्ति, कामनाओं की भरमार, भेंट-पूजा-ध्यान का महान तथा गहन विषय इत्यादि बारातियों की भरमार होती ही जाती है । यहाँ एक दूल्हे को ही संभालना भारी पड़ता है फिर इन महान दूल्हे के महान बारातियों के लिये तो एक क्या अनेक त्रिलोकियाँ भी कम ही दृष्टिगोचर हो रही हैं । क्या ईलाज है इस "महान" महारोग का? अर्थात कुछ भी नहीं "मरो और जीओ" बस केवल यही एक मात्र उपाय बचा है । और इसी का हम सभी मिलकर के सेवन कर रहे हैं । "मर्यादा" बेचारी को तो मुँह छुपाने तक की भी कहीं "रोशनी" दिखाई नहीं देती । बैमौत ही बेचारी

मार दी जाती है । जब "दूल्हे" की ऐसी सुन्दर ऊँची अवस्था है तो बाराती इस से कम कैसे हो सकते हैं अर्थात दो हाथ श्रेष्ठ ही साबित होंगे । यानी के सभी सवे (समेत) दूल्हे काल के अन्धकार में सदा के लिये "गुम" हो जाते हैं । विचारिये कहीं हम भी ऐसे ही दूल्हे की बारात में शोभा तो नहीं प्राप्त कर रहें ! यदि हाँ तो अभी भी वक्त है । कब तक ? जब तक यह धौंकनी चल रही है । याद रखियेगा कि इस धौंकनी का भी कोई भरोसा नहीं है यानी कभी भी यह धोखा दे देगी । इससे पहले कि यह धोखा देवे आप "अपना" कार्य सम्पन्न कर लेवें । नहीं तो केवल पछताना ही हाथ आवेगा । पर बनेगा कुछ भी नहीं । जो धर्म-मत-विशेष कभी कण-कण में रचे थे आज उन्हें लाईब्रेरीओं (पुस्तकालयों) में भी स्थान उपलब्ध नहीं है अर्थात खोजने पर भी नही मिलते । कारण है अगली नस्लों ने अपनी "मर्यादा" को खो दिया और सदा के लिये "गुम" हो गये । "बची केवल खाक ।" चल रहे दौर में इन दूल्हों (गद्दीधारी महंतो) की कमाल देखने में ही आती है । दूल्हा ब्याह कर के लाया है दुल्हन को और सीधा "महंत जी" के द्वार पर "डोला" उतरता है "महंत जी" चढ़ावे का भोग लगा रहे हैं और "बेचारा" दूल्हा बाहर "प्रसन्न मुद्रा" में डोले की वापसी का इन्तजार कर रहा है । "प्रण" है कि पहले प्रत्येक पदार्थ का उपभोग "गुरु जी" ही करेंगे तथा शेष "उच्छिष्ट" ही हमारे भाग्य

के उदय होंने का उत्तम फलदायक कारण साबित होगा। बेचारे धर्म राज युधिष्ठर जी भी ऐसे प्रण स्वपन्न में भी कहीं पूर्ण न कर पाये। परिवार के किसी भी पदार्थ पर गुरु जी का "गुप्त इशारा" हो जाये सारे कुल के जीव प्रसन्नचित्त हो जाते हैं कि उनका भाग्य उदय हो गया है। और खुद सजा-संवार कर इन्हें दूल्हों की हवस में होम करने के लिये सुन्दर-2 पदार्थों को होम किया जाता है! विचार करना है कि ये सब परमात्मा के नाम पर ही होता है। अपने को ये दूल्हे श्रेष्ठ-2 अवतारों के अंश बतलाते हैं। मानव को मूर्ख बनाना इतना आसान नहीं है। देखने में आता है कि अच्छे-2 पढ़े-लिखे विद्वान तक इनके फंदे में कैसे आ जाते हैं तो उसका कारण है "दैवी ताकतों" की महानता जो इन दूल्हों को मोहरा बना कर अपने "मकसद" को सिद्ध कर रही हैं बिना इन की मदद के कोई भी जीव इन खेलों को सुपने मे भी नहीं रचा सकता। मन की बात बता दी अथवा कुछ विघ्नों का निवारण कर दिया। बस-बस परमात्मा के लिये तो इतनी ही "कौशल" काफी हैं फिर शेष पीढ़ी दर पीढ़ी इन दूल्हों (गद्दियों) के भेंट जीव चढ़ने लगते हैं। शुरु होता तो नजर आता है पर अन्त होता कभी किसी ने नहीं देखा! पढ़े लिखे सभी तरह के विद्वानों ने ईश की केवल इतनी ही "खोज" की है और नतीजा भीड़ के रूप में प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर है। आप यदि इस इतनी ही खोज से आगे बढ़ने का

संकल्प करें तो शायद कुछ बात बन ही जाये ! "मुआ जीवंदा पेख - जीउंदे मर जान । जिन्हा मोहब्बत इक सिउ - ते माणस प्रधान ।" यदि आप की खोज में इन भावों की "चाल" होगी तो आप को अवश्य ही कल्याण की प्राप्ति होगी । अन्यथा इस "चाल" से रहित "अन्धा कुँआ" निश्चित ही फल समझियेगा । उस में जाने का द्वार तो दीख ही जाता है पर निकलने का आज तक खोज करने पर भी कभी किसी को नहीं मिला ! इन दूल्हों की बारातों की बाहरी चमक देखने लायक ही होती हैं । यानी दूर से ही ये रूहों को आकर्षित कर लेते हैं असलियत तो भोगने वाला ही बता सकता है । अतः "परमात्मा जी" इन भीड़ों पर क्यों लट्टू हो रहे हो, सब सिद्धियों (दैवी ताकतों) का "रूहों को फंसाने का जाल" मात्र ही हैं । करोड़ शान्ति तेरे अन्तर में है- मुक्ति तेरे अन्तर में है- परमात्मा तेरे रोम-रोम में बसा हुआ है- तू खुद उसी का केवल अंश मात्र है । यह सभ कुछ जानते हुऐ भी तू "अपने" को बाहर भीड़ में तलाश कर रहा है । याद रख अनन्त काल में भी तेरी यह खोज (तलाश) पूरी होनी तो दूर अभी तो शुरू ही नहीं हुई, कभी भी सिरे न चढ़ेगी । "आपणा आपु न पछाणहि - संतह कूड़ करे वडिआई । पाखण्ड कीने जम नहीं छोडै - लै जासी पति गवाई । जिनि अन्तर सबद आप पछाणहि - गति मिति तिन ही पाई ।" सभी प्रकार के इकट्ठों (भीड़ों) में प्रत्यक्ष महान-2 परमात्माओं

खद्दीधारी महंत (दूल्हा) तथा बारातिओं (अनुयाईयों), में से आप को अपने (आत्मा) कल्याण के लिये "तुच्छ" लेकिन पौष्टिक तथा स्वास्थ्यवर्धक "ईश्वरों" की चोण (चुनाव) बहुत ही होशियारी तथा सावधानी से अपने "विचार" विवेक द्वारा करनी पड़ेगी । कारण कई (ज्यादातर चल रहे वातावरण में) बार ये प्रत्यक्ष परमात्मा खद्दीधारी दलाल (महंत) रूपी दूल्हे तथा महान प्रस्तुत विशेष बाराती, जो कुछ "विशेष" संसार के जीवों के वास्ते तीनों मुल्कों तक सचमुच परमात्मा ही सिद्ध हैं । हो सकता है आप के लिये "हलाहल विष" (बचने का कोई रास्ता अथवा साधन ही नहीं) साबित हों । अथवा आपके स्वास्थ्य के लिये प्रतिकूल "कुपोषण" हों । दूसरी ओर जो "दुर्जन" घोषित (सिद्ध) किये जा चुके हैं ऐसे "डाकू" आपके सच्चे तथा पूर्ण बुद्धि-बल वर्धक स्वास्थ्य के लिये लाभकारी, उत्तम पौष्टिक लाभकारी अथवा कल्याणकारी (आत्मा के लिये) साबित हों ! लेकिन यह तभी संभव होगा जब आप सूक्षम तथा अन्तर की दृष्टि से (ईश कृपा रहित) देखने का प्रयास मात्र करेंगे । यह आप को एक ऐसा भेद बता दिया है जो बारातियों को दूल्हे सहित कभी बर्दाश्त नहीं होगा, हज्म करना तो दूर इनको सदा "दस्त" लगे ही रहेगें अर्थात कुछ न कुछ उगलते ही रहेगें । कारण अनन्त समय से इनके अन्दर "हराम" का "कुपोषण भण्डार" भरा पड़ा है । बेशक बाहर

यह पवित्र "नाम" का भण्डारा केवल "निजी पंथ" को पोषण देने के लिये लगातार करते रहते हैं भाई किसी से कहना मत "यह अन्दर की बात है" वर्ना बवाल मच जायेगा ! कारण कुछ जोर न चलने पर बावले होंगे और फिर बावले सिवाय बवाल मचाने के कुछ और कर भी क्या सकते हैं ? अतः "परमात्मा जी" (महान परमार्थी) जागो, सवेरा हो गया फिर शाम होने को क्या बचा है ? बाद में रोना पड़े पहले ही रो लो । "सबदि मरै सो मरि रहै - फिरि मरै न दूजी वार ।" "हंस-हंस कंत किनही न पाया - जिनि पाया तिन रोये । हंसी खुशी पिआ मिले - तो कौन दुहागिन होये । सुखिया सभ संसार है - खावे है और सोवे है । दुखिया दास कबीर है - जागै और रोवै है।"

एक बार शाम होने पर फिर कब सवेरा होगा इस की तो कोई गणना नहीं कर सका । पर यह निश्चित है कि यदि आपको सवेरा मिला है तो शाम पल-पल नजदीक आती जा रही है कब सूरज डूब जायेगा इसकी तो तीनों मुल्कों में कोई गारन्टी नहीं दे सका । (अथवा न जान सका) "झूठे सुख को सुख कहै - मानत है मन मौद । जगत चबेना काल का - कुछ मुख में कुछ गोद ।" इससे पहले कि "धोखा" हो जाये (होगा अवश्य) अपना कार्य सम्पन्न कर लो अन्यथा कभी न कभी किसी भी युग काल में यह करना अवश्य ही पड़ेगा (चाहे हो कितना भी

"कठिन") फिर इस "सच" से क्यों विमुख होते हो "परमात्मा जी !" "दिनस चढ़ै फिर आथवै - रैण सभाई जाई । आंव घटै - नर न बूझै - नित मूसा लाज टुकाई ।" जागो और इस "जाल" को पहिचानो। शिकारी ने बड़ी "चतुराई" से इसे बुना हैं । "गुड़ मिट्ठा माइआ पसरिआ मनमुख लग माखी पचै पचाई ।" (4-41) किनारे बैठ कर चाट भी लो और "अपना कार्य" भी कर लो । बीच में बैठे तो भाई "डूबना" निश्चित जानो, बचाने वाला कोई नहीं केवल उस "एक" के ! और उसी को छोड़ और सभी की फोटो "जेब" में लिये फिरते हैं । फिर कैसे बनेगी बात । जो बिगड़ी बनाता है उसी से बिगाड़ बैठा । इसलिये एक उस की ही दीन-हीन हो कर अनन्य रूप से शरण ग्रहण करें । अपनी उत्तम बुद्धि त्याग कर (कपट-रहित निर्मल हृदय से) "जिह बिध "गुर" उपदेसिआ सो सुन रे भाई । नानक कहत पुकार कै गहु प्रभ सरनाई।" (4-726)